81.

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ६ अंक १२ : अप्रैल १९८३

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA 700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ६ : अंक १२

अप्रैल १९८३

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

भगवान महावीर ३५७

भामा शाह ३६२

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ३७०

अर्द्धकथानक ३७८

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३८२

अष्ट दिकपाल, देवकुलिका की छत ४३, विमल वसहि, माउन्ट आबू, ई० १२ सदी

भगवान महावीर

पूरण चंद सामसुखा

भगवान् महावीर ने ईसा के जन्म से ५६६ वर्ष पूर्व वैशाली के अन्तर्गत क्षत्रियकुण्ड ग्राम में—पुरातन कवि की भाषा में कहने से ग्रीष्म ऋतु के पहले महीने, दूसरे पक्ष—अर्थात् चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि को, उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में अर्द्धरात्रि के समय जन्म ग्रहण किया था।

महावीर के जन्मस्थान का नाम क्षत्रियकुण्ड ग्राम था। आधुनिक एतिहासज्ञों के मत से यह सम्मिलित लिच्छवि राजसंघ की राजधानी, पुराने भारत के एक विख्यात् नगर वैशाली का अंश था। इस नगर के जिस भाग में क्षत्रियगण वास करते थे, वह क्षत्रियकुण्ड ग्राम, व जिस भाग में ब्राह्मणगण वास करते थे वह ब्राह्मणकुण्ड ग्राम कहा जाता था। वर्तमान पटना से २७ मील उत्तर में गंगा नदी के उस पार "वसाढ़", "वसुकुण्ड" व "बानिया" नाम के तीन छोटे-छोटे ग्रामों से क्रमशः "वैशाली", "कुण्डग्राम" और "वाणिज्य-ग्राम" के स्थानों का निर्देश किया जाता है।

जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मत के अनुसार लक्खीसराय स्टेशन से १६ मील दक्षिण में गया जिला के अन्तर्गत "लछवाड़" नामक एक ग्राम के समीपवर्ती एक पहाड़ की अधित्यका को "क्षत्रियकुण्ड ग्राम" का स्थान कह कर मानते हैं और दिगम्बर सम्प्रदाय वाले वर्तमान नालन्दा के समीपवर्ती "कुण्डलपुर" नामक ग्राम को महावीर के जन्मस्थान के रूप में मानते है। लेकिन ऐसा अनुमान होता है कि ये दोनों मान्यताएँ भ्रमपूर्ण हैं।

भगवान् महावीर जिस रोज माता के गर्भ में आकर उत्पन्न हुए उसी रात को उनकी माता अर्धसुप्त अवस्था में १४ महास्वप्न देख जागृत हुई। जैन धर्म का यह एक विश्वास है कि तीर्थंकर का जीव मातृ-गर्भ में उत्पन्न होने से ही उनकी माता अनुक्रम से १४ निम्नलिखित महास्वप्न देखती हैं :

यथा—।१। चतुर्दन्त श्वेत हस्ती ।२। वृषभ ।३। सिंह ।४। लक्ष्मीदेवी ।५। पुष्पमाला का जोड़ा ।६। चन्द्र ।७। सूर्य ।८। ध्वजा ।९। कलश ।१०। पद्म-सरोवर ।११। क्षीरसमुद्र ।१२। देवविमान ।१३। रत्नराशि और ।१४। निर्धूम-अग्नि।

भगवान् महावीर के पिता का नाम "सिद्धार्थ" था जो कि ज्ञातृ नामक क्षत्रिय कुल के अधिनायक थे। उनकी माता का नाम "त्रिशला" था जो वैशाली राज संघ के नायक महाराज "चेटक" की बहिन थीं। महावीर

का पिता-माता का दिया हुआ नाम "वर्धमान" था, पर घोर तपस्या करने से "महावीर", ज्ञातृकुल की सन्तान होने से "नायपुत्त" या "नात पुत्त" और वैशाली या विदेह देश के अधिवासी होने से "वैशालिक", "विदेहदत्त" इत्यादि नाम हुए।

इनके चाचा का नाम "सुपार्श्व", बड़े भाई का नाम "नन्दिवर्धन", बहिन का "सुदर्शना", स्त्री का "यशोदा", लड़की का "अनवद्या" या "प्रियदर्शना" था एवं नतनी का नाम "शेषवती" या "यशोवती" था। श्वेताम्बर जैनों के मत से महावीर का विवाह हुआ था और एक लड़की भी हुई थी, परन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय के मत से इनका विवाह नहीं हुआ था—ये आजन्म ब्रह्मचारी थे।

महावीर के बाल्यकाल का कुछ विशेष परिचय नहीं मिलता। ये शिक्षक के पास शिक्षा प्राप्ति के लिये भेजे गये, परन्तु ऐसा वर्णन है कि शिक्षा आरम्भ के पहले ही इनका ज्ञान शिक्षक के ज्ञान को अतिक्रम कर गया था। जो भी हो, वर्धमान कुमार अल्प समय में ही समस्त कलाओं में प्रवीण हो गये थे, परन्तु संसार में उनका मन नहीं लगता था। वे संसार त्याग कर सन्यास ग्रहण करने के सुयोग की प्रतीक्षा करते रहते थे।

माता-पिता इनसे अत्यन्त स्नेह करते थे इसलिए महावीर ने यह स्थिर किया कि उनके जीवितकाल में सन्यास ग्रहण नहीं करेंगे। जब इनकी अवस्था २८ वर्ष की हुई तब इनके माता-पिता "त्रिशला" व "सिद्धार्थ" की मृत्यु हुई। माता-पिता की मृत्यु के बाद वर्धमान कुमार ने संसार परित्याग कर दीक्षा ग्रहण करने का आदेश अपने बड़े भाई "नन्दिवर्धन" से माँगा। परन्तु "नन्दिवर्धन" के कुछ काल तक और गृहस्थावास में रहने का आग्रह करने से वे और दो वर्ष तक गृहस्थावास में रह गये। शेष वर्ष में वे प्रत्येक दिन दान दिया करते थे। कोई प्रत्याशी अपूर्ण मनोरथ होकर उनके पास से लौटता नहीं था।

महावीर स्वामी ने ३० वर्ष की अवस्था में संसार त्याग करने का निश्चय किया। हेमन्त ऋतु के पहले महीने, पहले पक्ष—अर्थात् अगहन महीने के कृष्ण पक्ष की दशमी तिथि के तीसरे प्रहर में, उत्तर-फाल्गुनी नक्षत्र में, क्षत्रियकुण्ड ग्राम के बाहर ज्ञातृकुल के उद्यान में दीक्षा ग्रहण करने के लिये आत्मीय स्वजन आदि नगर के लोगों के साथ बड़े आडम्बर से उपस्थित होकर, अशोक वृक्ष के नीचे शरीर के समस्त आभरण व वस्त्र उन्मोचन करके उन्होंने अपने हाथ

से अपने मस्तक का केश पांच बार में उत्पाटित किया और एकमात्र वस्त्र बायें कन्धे पर रख कर गृहस्थाश्रम को परित्याग करके सन्यास ग्रहण किया।

सन्यास ग्रहण करने के बाद १३ महीने पर्यन्त महावीर स्वामी वस्त्रधारी थे। उसके बाद सम्पूर्ण वस्त्र रहित हो गए। जो वस्त्र उनके कन्धे पर था, उसका आधा एक ब्राह्मण को दान कर दिया था और दूसरा आधा हिस्सा "सुवर्ण बालुका" नदी के किनारे कांटे के वृक्ष से लगकर कंधे से गिर गया। दीक्षा ग्रहण करने के बाद महावीर ने घोर तपस्या करना आरम्भ किया। दिन रात मौन धारण करके कायोत्सर्गपूर्वक ध्यानमग्न रहा करते थे। वर्षा ऋतु के चार महीनों में एक ही स्थान पर रहते थे और दूसरे समय में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण किया करते थे।

इसी समय में मंखली पुत्र "गोशालक" आकर उनके साथ मिला और स्वयं को शिष्य बनाने के लिये महावीर से अनुरोध किया। मौनव्रतधारी महावीर के सम्मति या असम्मति नहीं बतलाने से "गोशालक" उनके पास रह गया और अपने को महावीर का शिष्य कहकर प्रचार करने लगा। कई एक वर्ष रहकर गोशालक महावीर को छोड़ कर चला गया, लेकिन छः महीने के बाद आकर फिर उनके साथ मिला। फिर भी कुछ काल के बाद गोशालक महावीर स्वामी का साथ छोड़कर चला गया और अपने को सर्वज्ञ तीर्थंकर बतला कर प्रचार करने लगा एवं "आजीवक" सम्प्रदाय का धर्मगुरु व नेता हुआ। पिछले समय में यह गोशालक "निर्ग्रन्थ" यानि जैन सम्प्रदाय का एक प्रबल प्रतिद्वन्द्वी हुआ था।

भगवान् महावीर ने १२ वर्षों से कुछ अधिक काल पर्यन्त घोर तपस्या की और बहुत से स्थानों में पर्यटन किये। राजगृह, चम्पा, वैशाली, श्रावस्ती, कौशाम्बी, श्वेताम्बी, आलंभिका प्रभृति बहुत से नगर, ग्राम, उद्यान और वनों में—अनार्य लोगों की दृढ़भूमि प्रदेश में (वर्तमान संथाल परगना), बंगाल के राढ़ प्रदेश में तथा और भी बहुत से स्थानों में विचरण किया और अत्यन्त कष्ट सहे। शीत, ग्रीष्म, क्षुधा, पिपासा प्रभृति नैसर्गिक कष्ट मशकादिकों का दंशन, कुत्ते आदि जानवरों का आक्रमण एवं देव और मनुष्यों के किये हुए जो प्रचण्ड कष्ट इनको सहन करने पड़े थे, वे वर्णनातीत हैं। ये समस्त कष्ट महावीर ने अम्लान बदन व निर्विकार चित्त से सहन किये थे।

इस तरह से मन, वचन, काया संयत करके क्रोध, मान, माया, लोभ को सम्पूर्ण रूप से विध्वंश करके, प्रशान्त आकाश के सदृश निरालम्ब, वायु के सदृश अप्रतिबद्ध, शरदकालीन जल के सदृश शुद्ध हृदय, पद्मपत्र के सदृश निर्लिप्त

और सागर के सदृश गंभीर होकर अनुपम ज्ञान, अनुपम दर्शन, अनुपम चारित्र, अनुपम वीर्य, अनुपम सरलता, अनुपम कोमलता, अनुपम विनय, अनुपम शान्ति, अनुपम तुष्टि, अनुपम सत्य, संयम और तपस्याचरण द्वारा आत्मध्यान में लीन होकर विचरण करते-करते सन्यास ग्रहण करने के बाद १२ वर्ष अतिक्रान्त हो गये।

त्रयोदश वर्ष के प्रथमार्ध में ग्रीष्म काल के दूसरे महीने चतुर्थ पक्ष—अर्थात् बैशाख महीने के शुक्ल पक्ष दशमी तिथि में उत्तर-फाल्गुनी नक्षत्र में दिन के तीसरे प्रहर के शेष भाग में "जृम्भक" ग्राम के बाहर "ऋजुवालुका" नदी के किनारे "व्यावृत्त" नामक यक्षायतन के निकट "श्यामाक" नामक गृहस्थ की क्षेत्रभूमि में शाल वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न अवस्था में उनको "केवलज्ञान" प्राप्त हुआ। "केवलज्ञान" उत्पन्न होने से अर्हन्त, जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हुए। सम्पूर्ण विश्व के दृश्य व अदृश्य समस्त पदार्थ, सम्पूर्ण भाव उनको गोचरीभूत हुए।

भगवान महावीर संसार के उन महामानवों में एक ऐसे पुरुष थे जिनके जीवन आदर्श और सिद्धान्त में सम्पूर्ण विश्व के प्राणीमात्र का कल्याण निहित है। वे अतुलनीय अहिंसा और कठोर तपश्चर्या का जो महान् आदर्श रख गए हैं, वह भूत, भविष्य और वर्तमान काल के प्रत्येक मुमुक्षु का पथ-प्रदर्शक होकर रहेगा। उन्होंने वेद-वाक्यों का जो आत्माभिमुख अर्थ किया था उसके फलस्वरूप इन्द्रभूति आदि प्रकाण्ड विद्वान याज्ञिक ब्राह्मण अभिमान विसर्जन करके आत्मसाधना में निविष्ट हुए।

धार्मिक क्षेत्र में जाति-विभाग की असारता घोषणा करने के फलस्वरूप चंडाल वंशोद्भव "हरीकेशबल" प्रभृति साधु आत्म-साधना के उच्चतम शिखर पर उपनीत होकर मुक्ति सुख को अनुभव करने में समर्थ हुए थे व उनके चरणप्रान्त में बहुत उच्च जातियों का मस्तक नत हुआ था। भोग विलास की अकिंचित्कारिता बतलाने से चिर-विलासी महाधनैश्वर्य सम्पन्न "धन्ना", "शालीभद्र" आदि श्रेष्ठीगणों ने सर्वस्व त्याग कर भिक्षोपजीवी साधुओं की वृत्ति ग्रहण की थी।

भगवान् महावीर केवलज्ञान लाभ करने के बाद "पावापुरी" में आये। यहां पर वेद-वेदांगादि समस्त शास्त्र में विशारद ११ ब्राह्मण आचार्यों ने बहुत से शिष्यों के साथ इनका शिष्यत्व स्वीकार किया। इन ग्यारह जनों को निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के गणधर के पद में स्थापन किया गया और ये लोग साधु संघ के नेता हुए। इनका नाम इस प्रकार है—मगध के अन्तर्गत

गुब्बरग्राम निवासी गौतम गोत्रीय तीन भ्राता ।१। इन्द्रभूति, ।२। अग्निभूति, ।३। वायुभूति; कोल्लाग सन्निवेश के अधिवासी ।४। व्यक्त और ।५। सुधर्म; मौर्य सन्निवेश के अधिवासी ।६। मण्डित व ।७। मौर्यपुत्र; कोशल देश के अधिवासी ।८। अचल; मिथिला के अधिवासी ।९। अकम्पित ; वत्सदेश के अन्तर्गत तुंगीय सन्निवेश के अधिवासी ।१०। मेतार्य एवं राजगृह के अधिवासी ।११। प्रभास ।

गणधरगणों ने बारह "अंग शास्त्र" की रचना की। वर्तमान समय में जो ग्यारह अंगशास्त्र उपलब्ध होते हैं ये पंचम गणधर सुधर्म स्वामी के रचे हुए हैं। बारहवां अंग जिसके अन्दर चतुर्दश "पूर्व" शास्त्र अन्तर्भुक्त थे, वह इस समय में विलुप्त हो गया है।

महावीर ने तीर्थ-स्थापना की, इसलिए वे तीर्थंकर नाम से विख्यात हुए। जैन शास्त्र में तीर्थ शब्द का विशेष अर्थ प्रचलित है। तीर्थ कहने से साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका चतुर्विध संघ समझा जाता है, और जो महानुभाव इस प्रकार के तीर्थ अर्थात् चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं, उन्हें तीर्थंकर कहा जाता है। तीर्थंकर महावीर धर्मोपदेश देते हुए बहुत से नगर-ग्रामों में विचरण करने लगे। मगध, काशी, कोशल, वैशाली आदि प्रदेश के राजगण उनके असीम ज्ञान और महान् चरित्र से आकृष्ट होकर उन्हें श्रद्धा और भक्ति निवेदन करते थे। वे जब जिस स्थान पर उपनीत होते थे उस स्थान के राजा और प्रमुख व्यक्तिगण बड़े समारोह के साथ उनकी वन्दना करने उपस्थित होते थे।

मगध के शिशुनाग वंशीय महाराज "बिम्बिसार" जो जैन ग्रन्थों में "श्रेणिक" नाम से विख्यात हैं, महावीर के अनन्योपासक भक्त थे।

भगवान् महावीर ३० वर्ष पर्यन्त धर्मोपदेश करके वर्षाकाल के चौथे मास अर्थात् कार्तिक महीने के कृष्ण पक्ष की अमावस्या तिथि की रात्रि के शेष मुहूर्त्त में स्वाति नक्षत्र में वर्तमान राजगृह के निकटवर्ती "मध्यमापावा" नामक नगर में "हस्तीपाल" नामक राजा की लेखनशाला में ७२ वर्ष की अवस्था में इस नश्वर देह को त्याग करके जन्म-जरा-मरण को चिरकाल के लिये ध्वंस कर निर्वाण लाभ किया। वे ३० वर्ष से कुछ अधिक कम काल तीर्थंकर रूप में धर्मोपदेश प्रदान करके ७२ वर्ष पर्यन्त जीवित थे।

महावीर के निर्वाण के समय निर्ग्रन्थ अर्थात् जैन संघ में 'इन्द्रभूति गौतम' आदि १४००० साधु, 'चंदना' आदि ३६००० साध्वियाँ, 'शंख शतक' आदि १५९००० व्रतधारी श्रावक और "सुलसा" आदि ३१८००० श्राविकाएँ थीं।

भामा शाह

[जैन एकांकी]

[अकबर के साथ युद्ध करते-करते अर्थाभाव, पारिवारिक शोक एवं मृत्यु सभी ने मिलकर महाराणा प्रताप के मनोबल को एकबारगी तोड़ दिया। अतः उन्होंने अकबर को अधीनता स्वीकृति का एक पत्र भेजा। मेवाड़ के उन दुर्दिनों में अधीनता स्वीकार न कर मेवाड़ की स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखने में जिन लोगों ने महाराणा को उत्साहित किया उनमें कविवर पृथ्वीराज का नाम उल्लेखनीय है। फिर भी उनसे भी कुछ नहीं हुआ होता यदि महाराणा प्रताप के देशभक्त दीवान भामाशाह ने सैन्य संग्रह के लिए अपने पूर्व पुरुषों द्वारा संचित अर्थ सहित अपनी भी समस्त सम्पत्ति राणा को प्रदान न की होती तो। मेवाड़ की स्वाधीनता के लिए, आर्य ललनाओं के सतीत्व रक्षण के लिए दधीचि की भाँति जिन्होंने अपना सर्वस्व दान कर दिया था वे थे एक जैन श्रावक भामाशाह। उन्हीं-से इस काल के एक महादानी जैन श्रावक श्री सोहनलाल जी दूगड़ की स्मृति ग्रन्थ विमोचन सभा में कलामन्दिर के रंगमंच पर यह एकांकी अभिनीत हुई थी।]

प्रथम दृश्य

[अकबर का मन्त्रणा-कक्ष। अकबर पत्र हाथ में लेकर उत्तेजित से इधर-उधर घूम रहे हैं। सम्मुख ही मानसिंह खड़े हैं। सहसा मानसिंह के सम्मुख आकर]

अकबर : धन्य हो मानसिंह तुम। तुमने तो असाध्य को भी साध्य कर डाला। सचमुच ही तुम अजेय हो। तुम्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। प्रताप जैसे महान् शत्रु को भी तुमने विचलित कर दिया। पृथ्वी को भी मैंने बुलवाया था, वह अभी तक क्यों नहीं आया?

मानसिंह : आता ही होगा जहाँपनाह।

[तभी महावत खाँ आते हैं]

महावत : दिल्लीश्वर की जय हो।

अकबर : आओ महावत, आओ। आज हमारे आनन्द का पारावार नहीं। बहुत शत्रुओं को जीता है अकबर ने। समग्र हिन्दुस्तान पर विजय प्राप्त की है।....पर....प्रताप पर विजय! यह कोई सामान्य घटना नहीं है। अच्छा तो तुम जाओ और यह घोषणा करवा दो, नगर की हर हवेली पर विजय पताका फहरायी जाए, नगर को सजाया जाए। राजपथ के हर मोड़ से यह घोषित

करो कि आगरे के प्रासाद स्थित प्रांगण में राजपूत और मुगल सभी मिलकर महा-महोत्सव मनाएँ। मस्जिदों में, मन्दिरों में प्रार्थनाएँ की जाएँ। दरिद्रों को धन बाँटा जाए। आज राणा प्रताप ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली है। समझे महावत? जाओ, शीघ्र जाओ।

महावत : जो आज्ञा जहाँपनाह।

[महावत जाता है]

अकबर : मानसिंह! मैंने सब कुछ सोच लिया है। राणा प्रताप जब मेरे दरबार में आएगा तो उसका आसन मेरे सिंहासन के दाहिनी ओर होगा। प्रताप महान् वीर है। यथोचित सम्मान होना चाहिए उस वीर का।

मानसिंह : आप महान् हैं सम्राट।

[पृथ्वीराज प्रवेश करते हैं]

पृथ्वीराज : सम्राट की जय हो। आपने मुझे स्मरण किया महाराज?

अकबर : हाँ पृथ्वीराज! आज असमय में तुम्हें इसलिए स्मरण किया कि एक बहुत अच्छी खुशखबरी सुनानी है। ....पर पृथ्वी! तुम्हें एक कविता लिखनी होगी। बहुत खूबसूरत कविता। मैं उसे स्वर्ण अक्षरों में अंकित करवाऊँगा। फिर....

पृथ्वीराज : पर वह खुशखबरी है क्या जहाँपनाह? क्या आपके पौत्र हुआ है? या कुमार सलीम की शादी होने जा रही है [मानसिंह की ओर देखकर] मानसिंह की कन्या से?

अकबर : तुम्हारी दृष्टि इतनी निम्नगामिनी क्यों है, पृथ्वी? क्या सम्राट अकबर इन अवसरों के लिए इतना अधिक प्रफुल्लित होता?

पृथ्वीराज : तो आखिर है क्या वह खुशखबरी जहाँपनाह?

अकबर : वह यह है पृथ्वी, कि राणा प्रताप ने आज अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली है।

पृथ्वीराज : जहाँपनाह! कहीं परिहास तो नहीं कर रहे हैं आप?

अकबर : परिहास? नहीं, नहीं पृथ्वी, यह परिहास नहीं, हकीकत है। यह देखो प्रताप का खत।

[पृथ्वी पत्र लेकर पढ़ता है]

अकबर : बताओ तो मानसिंह! क्या उत्तर दें अब इस खत का?

मानसिंह : बस यही उत्तर दीजिए कि समग्र आगरावासी आपके सम्मान को

उत्सुक है। वीरोचित मर्यादा के साथ ही दरबार में आपको ग्रहण किया जाएगा।

पृथ्वीराज : जहाँपनाह! यह पत्र जाली है।

अकबर : जाली! कैसे समझा तुमने?

पृथ्वीराज : क्योंकि यह अविश्वसनीय है, सूर्य पश्चिम में उदित हो सकता है, अग्नि शीतल हो सकती है, किन्तु प्रताप अधीनता कभी स्वीकार नहीं कर सकता। ऐसा करने के पूर्व ही वह स्वयं का बलिदान कर देगा जहाँपनाह। फिर मुझे तो यह हस्ताक्षर भी प्रताप का नहीं लगता।

अकबर : [खत पृथ्वी के हाथ से लेते हुए] नहीं, नहीं, यह तो प्रताप का ही हस्ताक्षर है। मैंने आगरे में उत्सव मनाने की आज्ञा दे दी है। यह कार्य तुम्हारा है मानसिंह कि कहीं इसमें कोई त्रुटि नहीं रह जाए। और पृथ्वी! तुम वह कविता अवश्य लिखना। अच्छा तो मैं अब विश्राम के लिए अन्तःपुर जा रहा हूँ।

[अकबर जाते हैं]

मानसिंह : हूँ···दरबार में आपको वीरोचित मर्यादा के साथ ग्रहण किया जाएगा। ···किन्तु प्रताप, तुमने आज जो मर्यादा खो दी है उसके सम्मुख यह मर्यादा तो असली मुक्ता के सम्मुख नकली मुक्ता जैसी ही होगी।

पृथ्वीराज : मानसिंह, हमलोगों की आशा का जो एक दीप था वह भी आज निर्वापित हो गया।

मानसिंह : तो क्या पृथ्वी, अब तुम कविता लिखने बैठोगे?

पृथ्वीराज : हाँ मानसिंह! ···पर ···पर वह कविता स्याही से नहीं हृदय के रक्त से लिखूँगा और कहूँगा आर्यावर्त्त उठो, जागो, तुम्हारे धर्म की रक्षा के लिए, नारी जाति के सम्मान के लिए, मातृ भूमि की रक्षा के लिए।

मानसिंह : मैं समझ गया पृथ्वी तुम्हारा आशय, तुम्हारे दुःख का कारण। तुम मेवाड़ जाना चाहते हो तो जाओ और उद्‌बोधित करो प्रताप को। मनुष्य जब संकटों से जूझते-जूझते थक जाता है, हार जाता है तब एकमात्र कविता ही वह वस्तु है जो उसे उद्‌बोधित कर सकती है। न मैं तुम्हें रोकूँगा, और न ही यह बात किसी तीसरे के कानों तक पहुँचेगी। यद्यपि प्रताप ने मुझे अपमानित

किया था फिर भी वीर होने के नाते मैं वीर का सम्मान करना जानता हूँ पृथ्वी ।

पृथ्वीराज : तुम सचमुच महान् हो मानसिंह, महान हो ।

[पृथ्वीराज जाते हैं]

मानसिंह : प्रताप ! यह तुमने क्या किया ? यदि तुम लड़ते-लड़ते मृत्यु-वरण करते तो अमर हो जाते। पर आज''''आज मेवाड़ का सूर्य अस्तमित हो गया है । महान् गिरिशृंग टूटकर गिर गया है । आर्यावर्त्त के चारों ओर अन्धकार छा गया है ।

द्वितीय दृश्य

[आगरे का राजपथ, नृत्य-गीत समारोह]

तृतीय दृश्य

[अरावली का अरण्य प्रदेश । राणा प्रताप एक पेड़ के नीचे चिन्तामग्न बैठे हैं । गोविन्द सिंह प्रवेश करते हैं]

गोविन्द : मेवाड़ के राणा की जय ! भगवान एकलिंग की जय ! आपकी अधीनता स्वीकृति का पत्र मिलते ही कल आगरे में अकबर ने महा-महोत्सव मनाया । घर-घर में ध्वजाएँ फहरायी गयीं, स्थान-स्थान पर नौवत खाने बैठाए गए । समग्र आगरा नृत्य-गीत की सुमधुर लहर में डूब गया । बहुत बड़े सम्मान की बात है यह तो राणा के लिए ।

प्रताप : [निरुत्सुक भाव से] हाँ गोविन्द सिंह !

गोविन्द : सम्राट का कथन है दरबार में आपका स्थान उनके दाहिनी ओर होगा ।

प्रताप : सम्राट का अनुग्रह है ।

[प्रताप का भाई शक्ति सिंह आता है]

प्रताप : कौन ? शक्ति सिंह ?

शक्ति : हाँ, मैं शक्ति सिंह हूँ । मुगलों के साथ होने वाले युद्ध में आपका सहायक बनकर आया हूँ ।

प्रताप : अब उसकी कोई जरूरत नहीं है शक्ति ! मैंने अधीनता स्वीकृति का पत्र भेज दिया है ।

शक्ति : आपने अधीनता स्वीकृति का पत्र भेज दिया है ! नहीं, नहीं''''

प्रताप : हाँ शक्ति सिंह, अब अकबर से मेरा कोई विवाद नहीं है । अब जाने दो मेवाड़ को, जाने दो चित्तौड़ को, जाने दो कमलमीर को ।

शक्ति : किन्तु लोग हँसेंगे।

प्रताप : हँसने दो।

शक्ति : मारवाड़, चन्देरी हँसेगी।

प्रताप : हँसने दो।

शक्ति : मानसिंह भी हँसेगा।

प्रताप : उसे भी हँसने दो। मैं कर क्या सकता हूँ?

शक्ति : आपके मुख से ऐसी बात सुनने की प्रत्याशा तो स्वप्न में भी नहीं की थी भइया।

प्रताप : तुम्हीं बताओ मैं अकेला कर ही क्या सकता हूँ?

शक्ति : मैं जो आपके साथ हूँ।

प्रताप : ...पर तुम और मैं दो मिलकर भी दिल्लीश्वर के साथ युद्ध नहीं कर सकते। सेना कहाँ से आएगी? राजकोष शून्य है। भाई, संसार में सब दिन एक से नहीं होते।

शक्ति : यही बात तो मैं आपसे कहने आया हूँ कि सब दिन समान नहीं होते। मेवाड़ के दुर्दिन का अन्त अब आ गया है। अब तो उसका सुदिन आ रहा है। और मैं आया हूँ उसी सुदिन का सूत्रपात करते हुए। यहाँ पहुँचने के पूर्व ही मैंने मुगलों के हाथों से फिनसरा दुर्ग को छीन लिया है।

प्रताप : सेना कहाँ से मिली तुम्हें?

शक्ति : रास्ते में आते-आते मैंने सेना का संग्रह किया है। जिधर से गुजरा उधर यही कहता आ रहा हूँ मैं राणा प्रताप का भाई शक्तिसिंह हूँ। मैं उन्हीं की सहायता के लिए जा रहा हूँ। इतना सुनने मात्र से ही गृहस्थ घर छोड़कर आ गए, किसान खेत छोड़कर। आपके नाम में जादू है भइया। पर...वह आप नहीं जानते, मैं जानता हूँ। मात्र आपके नाम पर एक अच्छी खासी सेना एकत्रित हो गयी। उसी सेना की सहायता से मैं फिनसरा दुर्ग जय कर आया हूँ।

प्रताप : पर शक्ति! ऐसी सेना से एक दो दुर्ग ही जय किए जा सकते हैं, दिल्लीश्वर की संगठित वाहिनी का मुकाबला नहीं किया जा सकता। उसके लिए चाहिए सुगठित सैन्य, बन्दूकें, तोपें और इस कार्य के लिए चाहिए अर्थ। पर्याप्त अर्थ।

[पृथ्वीराज के साथ भामाशाह का प्रवेश]

पृथ्वीराज : कहाँ है राणा प्रताप ?

प्रताप : कौन पृथ्वी ? अरे ! आगरे के राजदरबार को छोड़कर तुम इस अरण्य में कैसे ?

पृथ्वीराज : क्या यह सत्य है तुमने अधीनता स्वीकृति का पत्र दिया है ?

प्रताप : हाँ, यह सत्य है पृथ्वी !

पृथ्वीराज : हाय, अभागे आर्यावर्त्त, आखिर राणा प्रताप ने भी तुम्हारा परित्याग कर दिया। हम तो दास बन ही चुके थे फिर भी एक गर्व था, एक सुख था कि एक ऐसा व्यक्ति है जिसका मस्तक कभी नहीं झुक सकता···पर प्रताप, आज हमारा वह गर्व भी चूर-चूर हो गया। एक आदर्श···

प्रताप : पृथ्वी ऽ ऽ ऽ ! तुम्हें शर्म नहीं आती ऐसा कहते ? उधर तुम सब बीकानेर, ग्वालियर, मारवाड़, चन्देरी जघन्य विलास में मग्न होकर सम्राट का स्तुतिगान करो और इधर मैं अकेला दुःखों का मारा कभी भूखा तो कभी प्यासा इस वन से उस वन में भटकता फिरूँ ? केवल इसीलिए कि तुम एक आदर्श पर गर्व कर सको ?

पृथ्वीराज : हाँ प्रताप, हाँ ! अधम भालू जादूगर के ईशारे पर नाचता है पर वनराज सिंह स्वमहिमा में गिरि कन्दराओं में ही निवास करता है। दीपक बहुत होते हैं किन्तु सूर्य ? सूर्य एक ही होता है। समतल भूमि कितनी ही सुन्दर क्यों न हो मनुष्य उसे पैर तले रौंदता चलता है पर उन्नत गिरिशिखर स्वमहिमा में समुन्नत रहता है। हम हैं सामान्य जीव अतः हम विलास व्यसन में ही जीवन व्यतीत करते रहेंगे। पर तुम ? तुम हो महामानव। संसार के सुख तुम्हारे लिए नहीं है। तुम्हें तो आग की लपटों से ही गुजरना पड़ेगा। तुम बप्पा और राणा सांगा के वंशधर हो, तुम कभी मस्तक नीचा कर नहीं चल सकते।

प्रताप : पर पृथ्वी ! मैं भी मनुष्य हूँ। एक पिता हूँ। यदि सभी राजपूतों ने मेरा साथ दिया होता तो मैंने दिल्लीश्वर को कभी का उखाड़ फेंका होता। फिर भी मैं आज बीस साल से लड़ता आ रहा हूँ। अब मैं जीर्ण हो गया हूँ, सब कुछ खो चुका हूँ। मेरा हृदय पारिवारिक शोक से आच्छन्न है। मैं अपने बच्चों को दो वक्त का भोजन नहीं दे सका। मेरी लड़की भूख से दुर्बल होती हुई मर गयी। अरण्य के इस कठोर शीत को वह सह न सकी। पृथ्वी,

अब मैं पूर्व का वह प्रताप नहीं हूँ। मैं हूँ अब मात्र प्रताप का कंकाल।

शक्ति और पृथ्वीराज :

[एक साथ] क्या कहा आपने ? क्या इरा अब इस दुनिया में नहीं रही ?

[प्रताप अश्रुमोचन करते हैं]

पृथ्वीराज : हाय भगवन्, क्या महानता का यही परिणाम है ? प्रताप ! आज मैं और तुम एक से ही दुःखी हैं। यद्यपि तुम महान् हो मैं नीच हूँ, परन्तु तुम्हारा और मेरा दुःख एक-सा ही है। मेरी पत्नी जोशी भी अब नहीं रही।

प्रताप : जोशी नहीं रही ? उसे क्या हुआ था ?

पृथ्वीराज : कैसे सुनाऊँ तुम्हें उसकी कलंक कहानी। खुशरोज के दिन वह सम्राट के प्रासाद में गयी थी। मैंने ही भेजा था उसे। किन्तु, वहाँ से लौटते ही उसने आत्महत्या कर ली।

प्रताप : तो अकबर, तुम इतने नीच हो।

शक्ति : मैं इसका प्रतिशोध लूँगा।

पृथ्वीराज : मैं इसीलिए आगरे का दरबार छोड़कर तुम्हारे पास आया हूँ। क्या तुम राजपूत ललना के अपमान का प्रतिशोध नहीं लोगे ?

गोविन्द : तो क्या राणा, इतना सुनने के उपरान्त भी माथा नीचा किए ही बैठे रहोगे ?

प्रताप : पर मैं अकेला क्या कर सकता हूँ ? मेरे पास पाँच सैनिक भी नहीं हैं।

शक्ति : मैं करूँगा सेना संग्रह।

प्रताप : यदि अर्थ पास में होता तो मैं पुनः सैन्यदल एकत्रित करता। पर राजकोष भी तो शून्य है।

भामाशाह : आपका कोष शून्य नहीं पूर्ण है महाराज !

प्रताप : क्या कह रहे हो भामाशाह ? कहाँ है अर्थ ? लगता है तुम राजस्व का हिसाब नहीं रखते ? राजकोष में एक कपर्दक भी नहीं है।

भामाशाह : यह सत्य है, फिर भी अर्थ है।

प्रताप : भामा ! कहीं तुम उन्मादी तो नहीं हो गए ? कहाँ है अर्थ ?

भामाशाह : महाराणा, जब चित्तौड़ के सुदिन थे, मेरे पूर्वजों ने दीवानी में प्रभूत धन संचय किया। वर्तमान में उस अर्थ का स्वामी यह दास है। यदि आप आदेश दें तो वह अर्थ आपके चरणों में समर्पित करूँ।

प्रताप : प्रभूत अर्थ ! कितना ?

भामाशाह : आश्चर्य न करें महाराज ! बीस हजार सैनिकों को चौदह वर्ष तक वेतन देते रहने पर भी वह समाप्त नहीं होगा।

[सभी विस्मित हो जाते हैं]

प्रताप : मंत्रीवर, मैं तुम्हारी स्वामी-भक्ति की प्रशंसा करता हूँ। पर मेवाड़ के राणाओं का यह नियम नहीं कि भृत्य को दिया हुआ अर्थ पुनः लें। तुमको जो अर्थ मिला है तुम उसका भोग करो।

भामाशाह : महाराज, कभी ऐसे भी दिन आते हैं जबकि भृत्य से भी ग्रहण किया जाता है और वह अपमान जनक भी नहीं होता। आज मेवाड़ का भी वही दिन है। आप मेवाड़ की स्वाधीनता को याद कीजिए, आर्य ललनाओं के अपमान को याद कीजिए। मैं अपने पूर्व पुरुषों का यह अर्थ तथा मेरा संचित अर्थ आपको नहीं मातृ-भूमि और आर्य ललनाओं की रक्षा के लिए आपको सौंप रहा हूँ। [घुटने टेककर] क्या आप इसे ग्रहण नहीं करेंगे ?

शक्ति : भइया, यह दान आप देश के लिए ग्रहण करें।

प्रताप : ठीक है, तब मैं यह दान नत-मस्तक होकर ग्रहण करता हूँ।

पृथ्वीराज : अब कोई डर नहीं। अब सोया हुआ सिंह जाग उठा है। [भामाशाह के निकट आकर] भामाशाह ! आजतक पुराणों में ही पढ़ा था कि दधीचि ने दानवों से देवताओं को बचाने के लिए वज्र निर्माण हेतु अस्थिदान किया था। पर इस कलियुग में तो तुमने अपना सर्वस्व दान कर उस कथन को प्रत्यक्ष दिखला दिया है। आज हम सोच सकते हैं कि ऐसा होना भी सम्भव है।

गोविन्द : भगवान एकलिंग की जय ! राणा प्रताप की जय ! भामाशाह की जय !

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

मरुदेवी माता को इस प्रकार दुःखार्त्त देखकर राजा भरत हाथ जोड़ कर अमृत तुल्य वाणी में बोले—"हे देवी, धैर्य के पर्वत तुल्य, वज्र के सार रूप, महासत्व सम्पन्न मनुष्य शिरोमणि मेरे पिता की माँ होकर आप इस प्रकार दुःखी क्यों हो रही हैं? इस समय पिता जी संसार समुद्र को अतिक्रम करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अतः हमलोगों को गले में लटकते हुए पत्थर की तरह समझकर परित्याग कर दिया है। उनके सम्मुख तो वन विचरणकारी हिंस्र पशु भी प्रस्तर मूर्त्ति की भाँति ही हो जाते हैं। वे उन्हें जरा भी कष्ट नहीं दे सकते। क्षुधा, तृष्णा, शीत-ग्रीष्म पिताजी के कर्म नाश करने में सहायक हो रहे हैं। यदि आपको मेरी बात का विश्वास नहीं है तो अल्प समय के मध्य ही जब पुत्र के केवल ज्ञान प्राप्त का संवाद सुनेंगी तो अवश्य ही विश्वास हो जाएगा।"

ठीक उसी समय द्वारपाल ने यमक और शमक नामक दो संवाद वाहकों के आने की सूचना महाराज भरत को दी। उनमें यमक ने आकर प्रणाम निवेदन कर कहा—"हे देव, आज पुरिमताल नगर के शकटानन उद्यान में युगादिनाथ को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है। ऐसा कल्याणकर संवाद निवेदन करते हुए मुझे लग रहा है भाग्योदय से आपकी भी अभिवृद्धि हो रही है।"

शमक तब उच्च कण्ठ से बोला—"देव, आपकी आयुधशाला में इसी समय चक्र रत्न उत्पन्न हुआ है।"

यह सुनकर राजा भरत कुछ देर के लिए चिन्तान्वित हो गए। उधर पिता ने कैवल्य प्राप्त किया है, इधर चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है—अब मेरे लिए प्रथम किसकी पूजा करना उचित है? किन्तु, कहाँ विश्व को अभयदान देने वाले मेरे पिता और कहाँ प्राण विनाशकारी यह चक्र। ऐसा चिन्तन कर उन्होंने प्रथम पिता की पूजा करने के लिए जाने को प्रस्तुत होने का आदेश दिया। यमक और शमक को बहुत-सा पुरस्कार देकर विदा किया एवं माता मरुदेवी से बोले—"देवी, आप सर्वदा करुणावशवर्त्ती होकर कहती थीं भिक्षाजीवी एकाकी मेरा पुत्र दुःखी है, किन्तु अब तो वे त्रिलोक के स्वामी

हो गए हैं। अब उनका वैभव देखिए"—ऐसा कहकर उन्हें हस्ती पृष्ठ पर आरूढ़ करवाया।

पीछे मूर्त्तिमान लक्ष्मी की तरह सोना रत्न और माणिक्य के आभूषणों से युक्त अश्व, हस्ती, रथ और पदातिक सेना लेकर महाराज भरत ने यात्रा प्रारम्भ की। निज आभूषणों की द्युति से जंगम तोरण रचनाकारी सैन्य सहित चलते हुए महाराज भरत ने दूर से ही ऊपरी प्राकार को देखा और मरुदेवी माता को बोले—"देवी, वो देखिए देवी और देवताओं ने प्रभु के समोसरण की रचना की है। सुनिए पिता जी के चरणों की सेवा से आनन्दित बने देवताओं की जय ध्वनि। प्रभु के चरण रूप आकाश में बजती हुई दुन्दुभि गंभीर और मधुर शब्द से हृदय में आनन्द उत्पन्न कर रही है। प्रभु के चरणों में वन्दन करने वाले देवताओं के विमानों से निकलती हुई घुँघरुओं की आवाज मैं सुन रहा हूँ। भगवान के दर्शनों से आनन्दित देवताओं का मेघ गर्जन-सा सिंहनाद आकाश में गूँज रहा है। ताल स्वर और राग समन्वित पवित्र गन्धर्व गीत प्रभु वाणी की दासी-सी हमलोगों को आनन्दित कर रही हैं। भरत के कथन से उत्पन्न आनन्दाश्रु से मरुदेवी माता की आँखों के जाले इस तरह कट गए जिस तरह जल के प्रवाह से आवर्जना धुल जाती है। अतः उन्होंने पुत्र की अतिशय सहित तीर्थंकरत्व लक्ष्मी को अपनी आँखों से देखा और उस आनन्द में लीन हो गयीं। उसी समय के समकाल में अपूर्वकरण के क्रम से क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर अष्ट कर्म क्षय करते हुए केवल ज्ञान प्राप्त किया और उसी समय आयु पूर्ण हो जाने के कारण हस्तीपृष्ठ पर बैठे हुए ही उन्होंने अव्यय मोक्ष पद प्राप्त किया। इस अवसर्पिणी काल में मरुदेवी माता प्रथम सिद्ध हुईं। देवताओं ने उनका सत्कार कर उनकी देह को क्षीर समुद्र में निक्षेप कर दिया। उसदिन से लोक में मृत का सत्कार करना प्रारम्भ हुआ। कहा भी गया है—महापुरुष जो कार्य करते हैं वे ही आचार रूप में स्वीकृत हो जाते हैं।

मरुदेवी माता की मोक्ष प्राप्ति से राजा भरत हर्ष और शोक से इस प्रकार व्याकुल हो गए जैसे मेघ की छाया और सूर्य के आलोक से शरत् का दिन होता है। फिर भरत राजचिह्न परित्याग कर परिवार सहित पैदल चलते हुए उत्तर दिशा के द्वार से समवसरण में प्रवेश किया। वहाँ चार निकायों के देवों से परिवृत्त और दृष्टिरूपी चकोर के लिए चन्द्रमा रूप प्रभु को देखा। भगवान को प्रदक्षिणा देकर प्रणाम किया और युक्त-कर माथे पर रख इस

प्रकार स्तुति करने लगे—"हे अखिलनाथ, आपकी जय हो ! हे विश्व को अभयदान देने वाले, आपकी जय हो ! हे प्रथम तीर्थंकर, हे जगत्त्राता, आपकी जय हो ! आज इस अवसर्पिणी में उत्पन्न लोकरूप कमल के लिए सूर्य रूप आपके दर्शनों से मेरा अन्धकार दूर हुआ। मेरे लिए यह जैसे सुप्रभात है। हे नाथ, भव्य जीवों के मनरूपी जल को निर्मल करने के लिए निर्मली तुल्य आपकी वाणी की जय हो। हे करुणा के क्षीर समुद्र, जो आपके शासन रूपी महारथ पर आरोहण करता है उनसे मोक्ष दूर नहीं रह सकता। हे देव, हे अकारण जगत्बन्धु, हम आपको साक्षात् देख रहे हैं इसलिए संसार को हम मोक्ष से अधिक मान रहे हैं। हे प्रभो, इस संसार में ही अपलक नेत्रों से आपके दर्शनों के महानन्द रूपी झरने में हमें मोक्ष सुख-स्वाद का अनुभव हो रहा है। हे नाथ, राग-द्वेष-कषाय आदि शत्रु द्वारा बद्धदशा प्राप्त इस संसार के लिए आप अभयदानकारी और बन्धन मुक्तकारी हैं। हे जगत्पति, आप तत्व का ज्ञान दीजिए, मार्ग दर्शन कराइए और संसार की रक्षा कीजिए। अब इससे अधिक और मैं आपसे क्या प्रार्थना करूँ ? जो लोग नानाविध उपद्रव और युद्ध करके एक दूसरे के ग्राम नगर आदि छीन लेते हैं वे राजा भी परस्पर मैत्री धारण कर आपकी सभा में बैठे हुए हैं। आपके समवसरण में आगत हस्ती अपनी सूँड़ से सिंह के पैरों को खींचकर उससे अपने कुम्भस्थल को बार-बार खुजला रहा है। यह भैंसा अपनी स्नेह भरी जीभ से बार-बार अन्य भैंस को चाटने की तरह हे स्वाकारी अश्व को चाट रहा है। क्रीड़ा करता हुआ यह मृग पूँछ हिलाते-हिलाते कान ऊँचा और माथा नीचा कर अपनी नाक से बाघ के मुख को सूँघ रहा है। यह तरुण विड़ाल अपने आस-पास आगे-पीछे दौड़ते हुए चूहों का अपनी बच्चों की तरह ही आदर कर रहा है। सर्प कुण्डली मारकर नकुल के पास निर्भय होकर बैठा है। हे देव, ये सब और अन्य प्राणी भी जो परस्पर वैर-भाव सम्पन्न हैं वे भी यहाँ निर्वैर बने उपस्थित हैं। इसका कारण आपका अतुल प्रभाव है।"

राजा भरत इस प्रकार जगत्पति की स्तुति कर क्रमशः पीछे हटे और स्वर्गपति इन्द्र के पीछे जा बैठे। तीर्थनाथ के प्रभाव से उस योजन परिमित स्थान में ही कोटि-कोटि प्राणी बिना किसी कष्ट का अनुभव किए बैठे हुए थे।

तब समस्त भाषा को स्पर्श करने वाली पैंतीस अतिशय सम्पन्न योजन गामिनी वाणी से प्रभु ने इस प्रकार उपदेश देना प्रारम्भ किया: "आधि-व्याधि-जरा और मृत्यु रूप हजारों ज्वालाओं से भरा यह संसार समस्त प्राणियों के

लिए प्रज्ज्वलित अग्नि जैसा है। अतः ज्ञानी व्यक्ति को जरा भी प्रमाद करना उचित नहीं है। कारण, रात्रि के समय यात्रा करने योग्य मरुस्थल में ऐसा कौन अज्ञानी है जो प्रमाद करेगा अर्थात् यात्रा नहीं करेगा। अनेक योनि रूप आवर्त्त से क्षुब्ध संसार रूपी समुद्र में पतित प्राणियों को उत्तम रत्न की भाँति मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ है। दोहद पूर्ण होने पर जैसे वृक्ष फलयुक्त होता है उसी प्रकार परलोक का साधन संग्रह करने से ही मनुष्य जन्म सफल होता है। इस संसार में शठ व्यक्तियों की वाणी आरम्भ में मीठी और परिणाम में कटुफल देने वाली होती है। उसी प्रकार विषय वासना विश्व को ठगती है और दुःख देती है। बहुत ऊँचाई का परिणाम जिस प्रकार गिर पड़ना है उसी प्रकार संसार के समस्त पदार्थों के संयोग का अन्त वियोग में है। संसार के समस्त प्राणियों का धन-वैभव और आयु मानो परस्पर स्पर्द्धा कर रही हो इस प्रकार नष्ट हो जाती है। मरुदेश में जिस प्रकार स्वादिष्ट जल नहीं पाया जाता उसी प्रकार संसार की चारों गतियों में भी लेशमात्र सुख का अनुभव नहीं होता। क्षेत्र दोष से दुःख सहनकारी और परमाधार्मिकों के द्वारा सन्तप्त जीवों को तो सुख होगा ही कैसे ? शीत, ग्रीष्म, वर्षा, तूफान और अनुरूप वध, बन्धन, क्षुधा-पिपासादि से अनेक प्रकार के कष्ट सहनकारी तिर्यंचों को भी सुख कहाँ ? परस्पर द्वेष असहिष्णुता कलह और च्यवन आदि दुःख देवताओं को भी सुख प्राप्त नहीं होने देते। फिर भी जल जैसे नीचे की ओर जाता है उसी प्रकार प्राणी भी अज्ञान के कारण बार-बार संसार की ओर ही दौड़ता है। इसलिए हे भव्य प्राणी, जिस प्रकार दूध पिलाकर सर्प का पोषण करा जाता है उस प्रकार मनुष्य जन्म के द्वारा संसार का पोषण मत करो।

"हे विवेकीगण, इस संसार में रहने पर नाना प्रकार के दुःख प्राप्त करने होते हैं—इसका समुचित विचार कर सब प्रकार से मुक्तिलाभ का प्रयत्न करो। संसार में नरक-यन्त्रणा-सा गर्भावास का दुःख है। ऐसा दुःख मोक्ष में कभी नहीं होता। कुम्भी में से खींचने से उत्पन्न नारकी जीवों की पीड़ा-सी प्रसव वेदना मोक्ष में कभी नहीं होती। भीतर और बाहर ठोके हुए कीलों की पीड़ा-सी आधि-व्याधि पीड़ा मोक्ष में कभी नहीं होती। यमराज की अग्रदूती समस्त प्रकार की शक्ति को अपहरण करने वाली और पराधीन कारिणी जरा वहाँ नहीं होती और नारक तिर्यंच, मनुष्य एवं देवताओं की तरह संसार भ्रमण करने की कारण रूप मृत्यु भी वहाँ नहीं होती। मोक्ष तो महानन्द अद्वैत और अव्यय सुख शाश्वत रूप और केवल ज्ञान सूर्य की

अखण्ड ज्योति है। सर्वदा ज्ञान दर्शन और चारित्र रूप तीन उज्ज्वल रत्न-धारणकारी पुरुष ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है। जीवादि तत्वों का संक्षेप व विस्तार में जो यथार्थ ज्ञान होता है उसे सम्यक् ज्ञान कहते हैं। ज्ञान पाँच प्रकार के होते हैं। मति, श्रुत, अवधि, मनपर्यव और केवल। अवग्रहादि भी बहुग्रहादि अबहुग्रहादि भेदयुक्त है। इन्द्रिय अनिन्द्रिय से उत्पन्न जो ज्ञान है उसे मतिज्ञान कहा जाता है। पूर्व, अंग, उपांग और प्रकीर्णक सूत्र ग्रन्थ में जो विस्तारित भाव से पाया जाता है और स्याद् शब्द के द्वारा सुशोभित है ऐसे अनेक प्रकार के ज्ञान को श्रुत ज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान देवता और नारकी जीवों को जन्म से ही उत्पन्न होता है उसे अवधि-ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान क्षय और उपशम लक्षणयुक्त है। मनुष्य और तिर्यंच के आश्रय से इसके छः प्रकार के भेद होते हैं। जिससे अन्य प्राणी का मनोभाव जाना जाए उसे मनपर्यव ज्ञान कहते हैं। मनपर्यव ज्ञान के भी ऋजुमति, विपुलमति दो भेद हैं। इनमें विपुलमति विशुद्ध और अप्रतिपात है। जो समस्त द्रव्य और पर्यायों के विषययुक्त विश्वलोचन की भाँति अनन्त और इन्द्रिय विषय हीन है उसे केवल ज्ञान कहते हैं।

शास्त्रोक्त तत्वों में रुचि सम्यक् श्रद्धा है। यह श्रद्धा स्वभाव या गुरूपदेश से प्राप्त होती है।

सम्यक् श्रद्धा को ही सम्यक्त्व या सम्यक् दर्शन कहते हैं। इस अनादि अनन्त संसार चक्र में भ्रमणशील जीव के ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय वेदनीय और अन्तराय नामक कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस करोड़ सागरोपम की है। गोत्र और नाम कर्म की बीस करोड़ सागरोपम और मोहनीय कर्म की स्थिति ७०कोटि × ७०कोटि सागरोपम की है। अनुक्रम से फलों का उपभोग करते हुए समस्त कर्म उसी प्रकार मसृण हो जाते हैं जिस प्रकार पर्वत से निकलने वाली नदी के आवर्त्त में पाषाण घिसते-घिसते मसृण हो जाता है। इस प्रकार क्षय प्राप्तकारी कर्म की स्थिति अनुक्रम से २९, १९ और ६९ कोटि × २९, १९ और ६९ कोटि सागरोपम की और १ कोटि सागरोपम से कुछ कम स्थिति जब बाकी रह जाती है तब जीव को यथाप्रवृत्तिकरण द्वारा ग्रन्थि देश प्राप्त होता है। दुःख में जिसे विद्ध किया जाए ऐसे राग-द्वेष के परिणाम को ग्रन्थि देश कहते हैं। वह ग्रन्थि कठोर ग्रन्थि की तरह खूब मजबूत होती है। किनारे पर आया हुआ जहाज जैसे वायु वेग से समुद्र की ओर प्रवाहित होता है उसी प्रकार रागादि प्रेरित बहुत से जीव ग्रन्थि को विद्ध किए बिना ही ग्रन्थि के निकट से प्रत्यावर्त्तन

करते है। बहुत से जीव राह में अवरोध प्राप्त कर नदी का जल जैसे रूद्ध हो जाता है उसी प्रकार परिणाम विशेष प्राप्त न होने से वहीं रूद्ध हो जाते हैं। कठिन मार्ग को पथिक जैसे क्रमशः अतिक्रम करता है उसी प्रकार बहुत से जीव जिनका भविष्य में कल्याण होने वाला है अपूर्वकरण द्वारा अपने सामर्थ्य का परिचय देकर दुर्भेद्य ग्रन्थि को भी शीघ्र ही विद्ध करता है। चार गति के बहुत से जीव अनिवृत्तिकरण से अन्तरकरण द्वारा मिथ्यात्व को क्षीण कर अन्तर्मुहुर्त्त में क्षायक् दर्शन को प्राप्त कर लेते हैं। इसे नैसर्गिक श्रद्धा कहा जाता है। गुरु उपदेश के अवलम्बन से भव्य जीवों को जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है उसे गुरु अधिगम से प्राप्त सम्यक्त्व बोला जाता है।

सम्यक्त्व के औपशमिक, सास्वादन, क्षयोपशमिक, वेदक और क्षायिक ये पाँच भेद हैं। कर्म ग्रन्थि विद्ध होकर जिस जीव को अन्तर्मुहुर्त्त के लिए सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इसी प्रकार उपशम श्रेणी के योग से जिसका मोह शान्त हो गया है ऐसे जीव को मोहक उपशम से जो सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसे भी औपशमिक सम्यक्त्व बोला जाता है। सम्यक्त्व भाव का त्याग कर मिथ्यात्व की ओर गतिशील जीव को अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से उत्कृष्ट रूप में छः आवलि एवं जघन्य रूप में एक समय पर्यन्त सम्यक्त्व का जो परिणाम रहता है उसे सास्वादन सम्यक्त्व कहा जाता है। मिथ्यात्व मोहनीय के क्षय और उपशम से जो सम्यक्त्व होता है वह क्षयोपशमिक सम्यक्त्व है। ये सम्यक्त्व मोहनीय परिणाम सम्पन्न जीवों को होता है। जो क्षपक भाव को प्राप्त कर लेते हैं जिनका अनन्तानुबन्धी कषायों का पाश क्षय हो गया है जिसका मिथ्यात्व मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय अच्छी तरह से क्षय हो गया है जो क्षायक सम्यक्त्व के सम्मुखीन है ऐसे और सम्यक्त्व मोहनीय के अन्तिम अंश का भोग कर रहा है ऐसे जीव को वेदक नामक चतुर्थ सम्यक्त्व प्राप्त होता है। सात प्रकृतियाँ (अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय क्षय करने में तत्पर शुभ भाव युक्त जीव को क्षायिक नामक पंचम सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

गुण भेद से भी सम्यक्त्व तीन प्रकार का होता है। यथा रोचक, दीपक और कारक। शास्त्रोक्त तत्व से हेतु और उदाहरण व्यतिरेक से जो दृढ़ विश्वास उत्पन्न होता है उसे रोचक सम्यक्त्व कहते हैं। जो अन्य के सम्यक्त्व

को प्रदीप्त करे उसे दीपक सम्यक्त्व कहते हैं और जो संयम और तपादि उत्पन्न करता है उसे कारक सम्यक्त्व कहते हैं। ये सम्यक्त्व सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिकता के लक्षणों से युक्त होते हैं। जिससे अनन्तानुबन्धी कषाय उत्पन्न नहीं होता उसे शम कहते हैं। सम्यक् प्रकृति से कषाय को देखने का नाम शम है। कर्म का परिणाम और संसार की असारता का विचार करते-करते विषयों से जो वैराग्य हो जाता है उसे संवेग कहते हैं। संवेग भावयुक्त जीवों के मन में संसार में रहना कारावास की तरह है। आत्मीय स्वजन बन्धन रूप है ऐसा जो विचार आता है उसी विचार को निर्वेद कहा जाता है। एकेन्द्रिय आदि समस्त प्राणी को संसार सागर में दुःख भोग करते देखकर मन में जो आर्द्रता आती है उसे दूर करने के लिए जो प्रवृत्ति होती है उसे अनुकम्पा कहते हैं। अन्य तत्व सुनने पर भी अर्हत् तत्व पर जो गौरव और विश्वास रहता है उसे आस्तिकता कहते हैं। इस प्रकार सम्यक् दर्शन का वर्णन किया गया है। इसकी प्राप्ति अल्प समय के लिए होने पर भी पूर्व का जो मति अज्ञान था वह नष्ट होकर मतिज्ञान में, श्रुत अज्ञान श्रुत ज्ञान में और विभंग ज्ञान अवधिज्ञान में रुपान्तरित हो जाता है।

समस्त प्रकार के सावद्य योग के परित्याग का नाम चारित्र है। यह अहिंसादि व्रतों के भेद से पाँच प्रकार का होता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच व्रत पाँच भावनाओं से युक्त होने पर मोक्ष के कारण होते हैं। प्रमाद योग से त्रस और स्थावर जीवों का प्राण नाश न करना अहिंसा व्रत है। अप्रिय और अहितकारी सत्यवचन भी असत्य तुल्य है। अदत्त वस्तु का ग्रहण न करना अस्तेय व अचौर्य व्रत है। धन मनुष्य के बाह्य प्राण तुल्य हैं अतः जो अन्य का धन अपहरण करता है वह उसका प्राण हनन करता है। दिव्य (वैक्रिय) और औदारिक शरीर में मन वचन काया से अब्रह्मचर्य सेवन करना कराना और अनुमोदन करने से विरत रहना ब्रह्मचर्य व्रत है। ब्रह्मचर्य अठारह प्रकार का होता है। समस्त वस्तुओं से मूर्च्छा व मोह त्याग अपरिग्रह व्रत है। कारण मोह से जो वस्तु नहीं है उसके लिए भी चित्त व्याकुल हो उठता है। यतिधर्म में अनुरक्त लोगों के लिए यह सर्वतोभाव से पालनीय है। गृहस्थों के लिए देश व आंशिक पालन को चारित्र कहते हैं।

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत गृहस्थों के लिए ये बारह व्रत हैं। ये व्रत सम्यक्त्व के मूल हैं। पंगु होना, कुष्ठ रोग होना और क्रूरता

हिंसा के परिणाम हैं। इसलिए बुद्धिमान व्यक्तियों का निरपराध त्रस जीवों की हत्या से विरत रहना उचित है। वाक् यंत्रों की न्यूनता, अस्पष्ट उक्ति, मूकत्व मुख व्याधि आदि झूठ बोलने के परिणाम हैं जानकर झूठ बोलना, स्त्रियों के सम्बन्ध में मिथ्योक्ति आदि पाँच प्रकार के असत्य भाषण का परित्याग कर देना चाहिए। नपुंसकता इन्द्रियहीनता को अब्रह्मचर्य का फल जानकर बुद्धिमान व्यक्ति स्वदार सन्तोष और पर स्त्री का त्याग करे। असन्तोष, अविश्वास आरम्भ और दुःख आदि को परिग्रह मूर्च्छा का परिणाम जानकर परिग्रह परिणाम करना उचित है।

दस दिशाओं में किसी भी दिशा में निर्मित सीमा का अतिक्रम कर न जाना दिग्व्रत नामक प्रथम गुणव्रत है। समर्थ होने पर भी भोग और उपभोग की संख्या निर्द्धारण भोगोपभोग परिमाण नामक द्वितीय गुणव्रत है। आर्त्त और रौद्र ध्यान करना पाप कर्म का उपदेश देना किसी को ऐसी वस्तु दान करना जिससे हिंसा होती है एवं प्रमादाचरण इन चार को अनर्थदण्ड कहा जाता है। शरीरादि अर्थदण्ड के प्रतिपक्षी अनर्थदण्ड का त्याग करना तृतीय गुणव्रत है।

आर्त्त और रौद्र ध्यान त्याग कर सावद्य कर्म का परिहार कर एक मुहूर्त्त अथवा ४८ मिनट पर्यन्त समभाव धारण करना सामायिक व्रत है।

दिवस रात्रि सम्बन्धी दिग्व्रत परिणाम को और अधिक सीमित करने को देशावकाशिक व्रत कहते हैं।

चार पर्व दिन (द्वितीया, पंचमी, अष्टमी और एकादशी) और चतुर्दशी के दिन उपवासादि तपस्या करना, संसार सम्बन्धी समस्त कर्मों का परित्याग करना, ब्रह्मचर्य पालन करना और अन्य स्नानादि क्रिया का परित्याग करना पौषध व्रत है।

[क्रमशः

अर्द्ध कथानक

बनारसी दास

[पूर्वानुवृत्ति]

पैदल चलकर हम अयोध्या आए। अयोध्या के विख्यात् मन्दिर में पूजा की। किन्तु, हम वहाँ अधिक दिन नहीं रहे। रोनाही की ओर आगे बढ़े। वहाँ हम तीर्थंकर धर्मनाथ स्वामी के सेवक बनकर रहे। वहाँ हम सात दिनों तक तीर्थयात्री के रूप में आत्म गोपन करते रहे और भगवान की पूजा करते रहे।

सात दिनों पश्चात् हम जौनपुर की ओर चले। राह में वहाँ जो कुछ भयंकर घटित हुआ पथिकों से सुना। आधा नूर ने बनारस और जौनपुर में शैतान का राज्य स्थापित किया था। उसका क्रोध महाजन और व्यवसायियों पर ही अधिक था। कितने व्यवसायी उसके आदेश से मार खाते-खाते मर गए। कितने अधमरे होकर रह गए। कितने व्यवसायी, कोठीवाले, शराफ, जौहरी दलाल उसके आदेश से धृत होकर कारागार में डाल दिए गए। उसने कभी यह विचार नहीं किया जिन्हें सजा दी है उनका अपराध क्या है? उन्हें एक साथ शृंखला में बाँधकर चाबुक लगवाए फिर अन्धकार भरे कैद में डाल दिया। कोई भी उसके हाथ से बच नहीं सका।

यह सब संवाद सुनकर हम काँप उठे और जौनपुर जाने की इच्छा का परित्याग कर दिया। हमने सुरहुरपुर की ओर जाना निश्चय किया। राह में नदी पड़ती थी। बाँस का मंच बनाकर खाली घड़ों से बाँधा और उनके सहारे नदी पार की। हमारा सौभाग्य था कि जंगल में भी एक छोटा दुर्ग मिल गया। वहाँ हम चालीस दिनों तक रहे।

फिर भाग्य ने पलटा खाया। अब अच्छा होने लगा। आधा नूर आगरा लौट गया। उसने जिन्हें बन्दी बनाया था उन्हें छोड़ दिया। किन्तु, जो अधिक धनी थे उन्हें निर्दयतापूर्वक पिटायी कर आगरा ले जाया गया। भगवान ही जानें उनका आचरण न्यायसंगत था कि नहीं। किन्तु मुझे और नरोत्तम को अब कोई भय नहीं था। हम घर लौट आए और दीर्घ विच्छेद के पश्चात् पुनः आत्मीय स्वजनों से मिले।

उसी समय साहू नेमिदास के पुत्र आगरा के सबल सिंह मोथिया का पत्र

मिला। पत्र उनका स्व-हाथ से लिखा हुआ था। पत्र में उन्होंने मुझे और नरोत्तम को आगरा आने के लिए लिखा था। उन्होंने लिखा था—

मैं तुम दोनों भागीदारों को पूर्वांचल परित्याग कर आगरा लौट आने का अनुरोध करता हूँ।

उसी समय आगरा से एक और चिट्ठी आयी। वह नरोत्तम के पिता की थी। वह उसी के लिए थी, दूसरे को पढ़ना निषेध था। गोपनीय ढंग से उसे पत्र दिया गया। वह पत्र उसने एकान्त में अकेले पढ़ा। पढ़ने के पश्चात् वह चिट्ठी उसने मेरे हाथ में दी और कहा—"यह तुम्हारे चाचा जी के हाथ की लिखी चिट्ठी है, पढ़कर देखो।"

चिट्ठी छोटी थी। आठ नौ पंक्तियों से अधिक नहीं थी। मंगल संभाषण सहित चिट्ठी प्रारम्भ हुई। उसके बाद जो संवाद था वह यह था—"खड़ग-सेन और बनारसी एक नम्बर का बदमाश है। छल-कपट से उन्होंने तुम्हें अपने जाल में फँसा लिया है। तुम यदि उनके साथ रहोगे और उनकी बात मानोगे तो शीघ्र ही नष्ट हो जाओगे अतः मेरी बात मानकर उनसे शीघ्र अलग हो जाओ। सावधान रहो।"

मैंने बिना किसी भाव को व्यक्त किए वह चिट्ठी पढ़ी। किन्तु नरोत्तम किसी भी प्रकार स्वयं को संभाल न सका। वह मेरे पैरों पर गिर कर रोने लगा। वह बार-बार मुझसे कहने लगा कि पिताजी ने जो कुछ लिखा है उस पर ध्यान मत देना। उसने यह भी कहा तुम तो जानते ही हो मेरे पिता जी में कोई बुद्धि नहीं है। तुम कुछ मत सोचो।

उसकी अभिव्यक्ति से लगा—उसका प्रेम पूर्ववत् ही है। यह जानकर मैं आश्वस्त हुआ। हम पूर्व की भाँति एक दूसरे पर अनुरक्त रहे। अब तो उसके प्रति मेरी श्रद्धा की सीमा ही नहीं थी। जो भी मिलता उसी से उसके गुणों का बखान करता। यहाँ तक कि उस पर एक कविता ही लिख डाली और पक्षी की तरह उसे घर-बाजार सर्वत्र आवृत्ति करता। कविता यह है—

नरोत्तमदास स्तुति

नवपद ध्यान गुन गान भगवंतजी को,
करत सुजान दिढ़ग्यान जग मानियै।
रोम-रोम अभिराम धर्मलीन आठो जाम,
रुप - धन-धाम काम-मूरति बखानियै॥

तनकौ न अभिमान सात खेत देत दान,
महिमान जाके जसकौ बितान तनिये।
महिमानिधान प्रान प्रीतम बनारसी कौ,
चहुपद आदि अच्छरन्ह नाम जानिये ॥४८६॥

न-रो-त-म।
नरोत्तम ही मेरा सबसे प्रिय मित्र है।

हम दोनों जब आगरा जाने के लिए तैयार होने लगे मेरे पिता जी एकाएक अस्वस्थ हो गए। उन्हें भयंकर यन्त्रणा हो रही थी। उनकी मृत्यु निकट है यह समझने में किसी को भी शंका नहीं रही। मृत्यु निश्चित थी अतः आत्मीय स्वजनों में इस समय फलमूल वितरण की जो रीति है उसी के अनुसार फलमूल वितरण किया गया। अब आगरा जाने का तो प्रश्न ही नहीं रहा। तब नरोत्तम ने अकेले जाना ही तय किया। अतः हम दोनों ने भागीदारी का काम बन्द कर दिया और विक्रम संवत् १६७३ वैशाख शुक्ला सप्तमी सोमवार को खाता पत्र तैयार कर जो जमा रहा वह हम दोनों ने बाँट लिया। हमारे व्यवसाय के रोजनामचे की दो-दो प्रतियाँ कर हम दोनों ने एक-एक प्रति अपने पास रख ली।

नरोत्तम आगरा चला गया और मैं मुमुर्षु पिता के पास जौनपुर रह गया। उन्होंने ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी को अन्तिम श्वाँस लिया। लोग मुझे सान्त्वना देने आए। बोले, वे स्वर्ग गए हैं। मैं तो नहीं जानता वे कहाँ गए, यह तो सर्वज्ञ ही जानते हैं। किन्तु दुःख से कातर बना मैं कई दिनों तक रोता रहा। फिर भी अन्त में यही सोचकर कि संसार में सदैव कोई नहीं रहता हृदय को कठोर बना लिया।

एक मास तक मैं अपने काम में न मन लगा सका न समय। फिर कपड़े का व्यवसाय करना स्थिर किया। मैंने हुण्डी के बदले पाँच सौ रुपये उधार लिए और कपड़े खरीदने लगा। कपड़ा खरीदना शेष भी नहीं हुआ कि नेमिदास शाह की चिट्ठी मिली शीघ्र ही आगरा जाने की। उन्होंने लिखा—मेरा आगरा जाना बहुत जरुरी है कारण मेरी अनुपस्थिति में हम जो भागीदारी में काम कर रहे थे उसका खाता बन्द नहीं हो सकता।

अधिक देर करना उचित न समझ मेरा खरीदा हुआ कपड़ा और व्यवसाय का भार शिवराम नामक एक ब्राह्मण पर छोड़कर एक शुभदिन आगरा के लिए रवाना हुआ।

मैं वर्षाकाल के आषाढ़ मास में आगरा गया। साथ में एक घोड़ा और ६ अनुचर लिए। प्रथम दिन मैंने घाईंसूया नामक ग्राम में रात भर के लिए विश्राम किया। वहाँ मेरा एक अन्य वणिक से मिलना हुआ। वह भी उसी दिन वहाँ आया था। वह माहेश्वरी गोत्रीय हिन्दू था और आगरा के आस-पास कहीं रहता था। वह सूद का व्यवसाय करता था। उसके साथ ६ अनुचर थे। मथुरा के दो ब्राह्मण भी उसके साथ थे। इस प्रकार हम १९ आदमी हो गए। सभी आगरा के यात्री थे। हम लोगों ने एक साथ जाना और एक ही जगह विश्राम लेना स्थिर किया। अतः दूसरे दिन सुबह हमने हँसते-खेलते परस्पर परिहास करते-कराते यात्रा की। इसी प्रकार अनेक ग्राम-नगर अतिक्रम कर हम 'कोरारा' नामक एक स्थान पर आए। घातमपुर यहाँ से बहुत नजदीक था। वहाँ हम एक सराय में ठहरे एवं खाना-पीना कर विश्राम करने लगे। मथुरा के दोनों ब्राह्मण एक अहीर लड़की के घर गए जिसका कि स्वभाव और चरित्र अच्छा नहीं था। उनका एक आदमी बाजार में जाकर एक रुपये का खाना और मिष्टान्न ले आया। उस ब्राह्मण ने एक शराफ की दुकान में रुपया तुड़वाया था। वह शराफ थोड़ी देर के बाद ही उस अहीर लड़की के घर आया और बोला कि उसने खोटा रुपया दिया है। वह रुपया उसने ब्राह्मण को दिखलाया। ब्राह्मण उस रुपये को देखकर बोला—"मैंने जो रुपया तुड़वाया था यह वह रुपया नहीं है।" दोनों ने अपने पक्ष के समर्थन में बहस शुरु कर दी। हट्टे-कट्टे उस ब्राह्मण ने क्रोध में आकर शराफ को कुछ तमाचे जड़ दिए। हल्ला सुनकर वहाँ जो लोग जमा हो गए थे ब्राह्मण को पकड़ने गए किन्तु, उसे पकड़ने की ताकत किसमें थी? क्रोध में बड़बड़ाता वह शराफ को मारता ही गया। इसी बीच शराफ का एक भाई वहाँ आ पहुँचा। वह था मुँह का मीठा, मन का काला, कपटी और नीच। वह झगड़ा सलटा देगा कहकर ब्राह्मण के पास और कितना रुपया है देखना चाहा एवं उसकी तलाशी लेकर कपड़े की तह में से पच्चीस रुपये निकाले। उन रुपयों की ओर कुछ देर देखकर वह बोला—"ये सब रुपये ही खोटे हैं, इन्हें कोतवाल को दिखलाना चाहिए।" उसने सबके सामने वे रुपये ले लिए और प्रत्येक को देखने के लिए कहा जबकि उसने किसी को भी वे रुपये देखने नहीं दिए। फिर वह बोल उठा—"इन रुपयों को लेकर मैं कोतवाल के पास जाता हूँ।" यह सुनकर दोनों ब्राह्मणों के मुँह सूख गए। क्या करें स्थिर न कर सकने के कारण मृतक की तरह जमीन पर गिर पड़े।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती ॥ मार्च १९८३

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'बन्धन और मुक्ति' (डा० सागरमल जैन), 'अध्यात्म-साधना में तप' (नरपत सिंह मेहता)।

कुशल निर्देश ॥ मार्च १९८३

इस अंक में है 'श्री सहजानन्दघन जी महाराज द्वारा पं० प्रभुदास भाई एवं मुरारजी भाई को दिए पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'हमारी सामाजिक व धार्मिक एकता का स्वरूप व उसके उपाय' (अगरचन्द नाहटा), 'साधु तपस्वी श्री मोहनराजजी भंसाली' (भँवरलाल नाहटा)।

जैन जगत ॥ मार्च १९८३

इस अंक में है 'पाकिस्तान में गौड़ी पार्श्वनाथ का प्राचीन जैन तीर्थ' (भूरचन्द जैन)।

तीर्थंकर ॥ मार्च १९८३

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'अभिषेक और पूजा : एक वैज्ञानिक छानबीन' (बी० टी० बजावत), 'ये जहर भरे लोग' (डा० कुन्तल गोयल), 'समण सुत्तं चयनिका : कुछ चुनी हुई वाक्य मणियाँ' (डा० कमलचन्द सोगानी), 'अन्तिम पृष्ठ : चिन्तन के रूप में खत' (गणेश ललवानी)।

श्रमण ॥ मार्च १९८३

इस अंक में है 'अनेकान्तवाद' (डा० प्रतिमा जैन)।

तित्थयर

वर्ष ६

मई १९८२—अप्रैल १९८३

वार्षिक सूची

कथानक

	ललितांग देव	२७३, ३०२, ३३३
युधिष्ठिर माजी	रुपम्	१०
हेमचन्द्राचार्य	त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र	२२, ५७, ८०, १२०, १५२, १७१, २०२, २३३, २६१, ३११, ३४१, ३७०

कविता

सुमन्त भद्र	आह्वान	१३८
—	शब्दाखेट	२०८

जीवनी

बनारसीदास	अर्द्ध कथानक	१४०, १८६, २१६, २४४, २८४, ३१६, ३४६, ३७८

जैन पत्र पत्रिकाएँ

	जैन पत्र पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या	३१, ६३, ६४, १२८, १६०, १६१, २२३, २५५, २८८, ३१६, ३५२, ३८२

नाटक

	भामा शाह	३६२

निबन्ध

अगरचन्द नाहटा	गुप्तकालीन एक भव्य पार्श्वनाथ मूर्त्ति	१७
—	डा० ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'जैन प्रतिमाएँ'	६१
—	बीकानेर की मथेरन चित्रशैली	२६३
—	शब्द-रत्न महोदधि नामक संस्कृत गुजराती का महान् जैन कोश	२५२
—	संस्कृत का एक पद्यबद्ध सत्रहवीं शताब्दी का कोश सिद्ध शब्दार्णव	२२२
अमृतलाल शास्त्री	जैन अलंकार साहित्य	४५, ७१

'उदय' नागोरी	जैन दर्शन और विज्ञान में आत्मा	१०८
पूरणचन्द सामसुखा	काल द्रव्य	२०
—	भगवान महावीर	३५७
—	सत्य की उपलब्धि	५५
भँवरलाल नाहटा	धातुमय जैन प्रतिमाएँ १७६, २१०, २४०, २६७, ३२५	

श्रद्धांजलि

सुखलाल संघवी	सामसुखा जी के प्रति मेरा आकर्षण	१०५

महावीर वाणी

महावीर ने कहा था ५, ३७, ६६, १०१, १३३, १६५, १६७, २२६

चित्र

अम्बिका सह नेमिनाथ, सुलगी, बांकुड़ा	१३२
अष्ट दिकपाल, माउन्ट आबू	३५६
उत्तरी शिखर से शत्रुंजय का दृश्य	२२८
ऋषभनाथ, भैरवसिंहपुर, उड़ीसा	३६
गुप्तकालीन पार्श्वनाथ मूर्त्ति, पटना	४
बाहुबली, एलोरा	६८
बाहुबली, भिलारी, जबलपुर	१००
विद्यावारिधि स्वर्गीय अगरचन्दजी नाहटा	२६२
शालिभद्र का विवाह	१६४
शालिभद्र की संलेखना	२६०
शीतलनाथ स्वामी का मन्दिर, कलकत्ता कार्तिक महोत्सव के अवसर पर	१६६

Vol VI No 12 : Titthayara : April 1983
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD
CALCUTTA-700001